International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(3): 153-159

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(3): 153-159
© 2019 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 14-03-2019
Accepted: 24-04-2019

डॉ० विद्याधर सिंह
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू कश्मीर, भारत

Correspondence
डॉ० विद्याधर सिंह
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू कश्मीर, भारत

संस्कृत एवं पालिव्याकरण में पठित अव्ययपदों का तुलनात्मक विवेचन

डॉ० विद्याधर सिंह

प्रस्तावना

संस्कृत, प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं के अन्तर्गत आती है और पाली की गणना मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं में होती है। संस्कृत में पदों का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर कई प्रकार का है। अर्थबोधकता की दृष्टि से साहित्याचार्यों ने इसके तीन भेद स्वीकार किये हैं – वाचक, लक्षक तथा व्य४जक।

स्याद्वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्र व्य४जकस्त्रिधा।
शब्दोऽपि वाचकस्तद्वल्लक्षको व्य४जकस्तथा।।

इसी प्रकार व्युत्पत्ति के आधार पर भी इसके चार भेद होते हैं– जाति, गुण, क्रिया एवं द्रव्य।

चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः।
जातिशब्दाः गुणशब्दाः क्रियाशब्दा यदृच्छाशब्दाश्चतुर्धा।।

वैयाकरणों में भी कई पक्ष हैं, जिनमें तीन प्रमुख हैं– प्रथमपक्ष केवल 'नाम' और 'आख्यात' को ही पद मानता है, अर्थात् जिन पदों से द्रव्य या सत्व की प्रतीति होती है, वे 'नामपद' कहलाते हैं तथा जिनसे भाव अर्थात् क्रिया की प्रतीति होती है, वे 'आख्यातपद' कहलाते हैं। इस मत में नाम और आख्यात के अन्तर्गत ही उपसर्ग और निपात का अन्तर्भाव कर लिया जाता है, परन्तु द्वितीय पक्ष में अर्थ की दृष्टि से नाम और आख्यात से सर्वथा भिन्न अर्थ की प्रतीति कराने के कारण इनकी पृथक् सत्ता स्वीकार की जाती है। इस प्रकार द्वितीय पक्ष पदों की स्थिति चार प्रकार का मानता है– नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। इनमें से नाम और आख्यात वाचक हैं तथा उपसर्ग और निपात द्योतक हैं–

नह्येतौ साक्षादर्थवदतः अपितुतदगतिविशेषद्योतकाविति।
वाचकाभ्यां नामाख्याताभ्यां प्रविभक्तौ।।

वस्तुतः व्याकरणिक दृष्टि से चतुर्धा पदविभाजन ही सर्वाधिक मान्य एवं प्रचलित है– तद्यान्येतानि चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्ग निपाताश्च। नामाख्याते चोपसर्ग निपाताश्चेति वैयाकरणाः। चतुर्णा पदजातानां नामाख्यातोपसर्गनिपातानां सन्ध्यपद्यो गुणौ प्रातिज्ञम्। चत्वारि शृग – चत्वारि शृगणि। चत्वारि पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च। इसके अतिरिक्त एक मत और भी है, जो उपर्युक्त चार प्रकार के पदों के अतिरिक्त कर्म प्रवचनीयों (च्वेज च्वेपजपवदे) को पृथक् पद स्वीकार करता है। इस मत के अनुसार कर्मप्रवचनीय उपसर्गों के समान साक्षात् रूप से किसी क्रिया की विशेषता का द्योतन नहीं करते अपितु ये क्रिया के साथ किसी कर्तृभिन्न संज्ञा या सर्वनाम का सम्बन्ध व्यक्त करते हैं। अतः ये उपसर्गों से भिन्न हैं– साक्षात् क्रियाविशेष प्रकाशना भावात्तदपि प४चकम्। क्रियाविशेषक उपसर्गः। पचतीति क्रिया गम्यते, तां प्रोविशिनष्टि। आचार्य पाणिनि ने अपने भाषाशास्त्रीय विवेचन में संस्कृत के पदों का विभाजन दो भागों में किया है– सुबन्त और तिङन्त (सुप्तिङन्तं पदम्)। वस्तुतः ये नाम और आख्यात के ही पर्यायवाची हैं। रूपरचना में उपसर्गों का स्वतन्त्र रूप में प्रयोग न होने के कारण पाणिनि ने उपसर्गों को पद नहीं माना है। इसी प्रकार उन्होंने निपातों (अव्ययों) की गणना सुबन्तों में की है। यद्यपि निपातों में सुप् विभक्तियों का प्रयोग नहीं होता तथापि 'अपदं न प्रयु४जीत' केयाकरणसम्मत विधान का निर्वाह करने के लिए निपातों में भी सुप्–विभक्ति का विधान करके उसका लोप माना है–

अव्ययादाप्सुपः।

प्रस्तुत शोधपत्र में संस्कृत एवं पालि व्याकरण में प्राप्त अव्यय पदों को तुलनात्मक दृष्टि से देखने का विनम्र प्रयास किया गया है।

जिन शब्दों में लिग, वचन एवं विभक्ति आदि के कारण कोई परिवर्तन नहीं होता, उन्हें 'अव्यय' या 'अविकारी' (पदकमबसपदंइसमे) कहते हैं। Avyaya literally means that which undergoes and was probably applied first the supreme deity. Thransferred to the province of grammer it meant indeclinable.[1] न व्येतीत्यव्ययमिति। क्व पुनर्न व्येति? स्त्रीपुन्नपुंसकानि सत्वगुणाः, एकत्व द्वित्व बहुत्वानि च। एतानर्थान् केचिद् वियन्ति, केचिन्न वियन्ति। येन वियन्ति तदव्ययम्। [2]

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न वेति तदव्ययम्।। [3]

आचार्य पाणिनि के शब्दों में 'स्वरादि निपातमव्ययम्' अर्थात् स्वरादिगण पठित शब्द और निपात–संज्ञक शब्दों [+] की अव्यय संज्ञा होती है। [4] मोग्गल्लान आचार्य ने अव्यय को असंख्य कहा है, क्योंकि उसमें संख्या नहीं होती है और पाणिनि के तुल्य ही ऐसे शब्दों से सभी विभक्तियों का लोप माना है। [5♦]

इस प्रकार व्याकरणगत बदलाव की कठिन प्रक्रियाओं में भी जिसने अपना स्वरूप अक्षत रखा, उसे हम अव्यय कहते हैं। सरल–सहज और सामान्य भाषा में जिसका व्यय न हो, वह अव्यय है–

यन्न व्येति तदव्ययम्। न व्येति, विविधं विकारं न गच्छतीत्यव्ययम्। [6] आधुनिक भाषाशास्त्रीय विश्लेषण में उपसर्गों एवं निपातों को लिग, वचन तथा विभक्ति की दृष्टि से विकार न होने के कारण एक ही वर्ग में रखा जाता है। कतिपय वैयाकरण भी उपसर्ग एवं निपात, दोनों को द्योतक मानने के कारण अर्थ बोधकता की दृष्टि से इन दोनों में कोई अन्तर नहीं मानते, [7] किन्तु नैयायिकों ने प्रयोग के आधार पर इनके मौलिक अन्तर को स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में उपसर्गों का प्रयोग सदा ही नाम या आख्यातपदों के अग के रूप में होता है, उनका स्वतन्त्र प्रयोग नहीं होता, जबकि निपातों का प्रयोग नाम या आख्यातपदों के अग के रूप में न होकर स्वतन्त्र रूप में होता है। अतः पारिभाषिक रूप में उपसर्गों को 'द्योतक'* तथा निपातों को 'वाचक' कहा जाता है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि वैदिक साहित्य में निपातों के समान ही उपसर्गों का भी धातु से पृथक् प्रयोग किये जा सकने के कारण यद्यपि इनमें विशेष अन्तर नहीं था, परन्तु लौकिक संस्कृत की संरचना में तो उपसर्ग पूर्णतः नाम या आख्यात के अभिन्न अग हो गये हैं, जबकि निपातों का अपना स्वतन्त्र रूप बना हुआ हैं यहाँ पर इन दोनों को पृथक्–पृथक् रूप में ही प्रस्तुत किया जा रहा है –

उपसर्ग (Verbal Prefixes):

किसी धातु के मूल अर्थ में विशेषता लाने के लिए वैयाकरणों द्वारा जिन शब्दांशों का धातु से पूर्व प्रयोग किया जाता है, उन्हें 'उपसर्ग' कहते हैं। [8] संस्कृत–परम्परा में उपसर्गों का सर्वप्रथम उल्लेख महर्षि यास्क के निरुक्त में प्राप्त होता है। उन्होंने जिन 20 उपसर्गों का उल्लेख किया है, वे निम्नलिखित हैं– आ, प्र, परा, अभि, प्रति, अति, सु, निर्, दुर्, नि, अव, उत्, सम्, वि, अप, अनु, अपि, उप, परि, अधि। [9] पाणिनि ने इनके अतिरिक्त 'निस्' और 'दुस्', इन दो और उपसर्गों का भी परिगणन किया है, इस प्रकार से इनकी कुल संख्या 22 हो जाती है – प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप, [10] किन्तु संरचनात्मक दृष्टि से इन्हें 'निर्' और 'दुर्' का ही संरूप (Allomorph) माना जाएगा। पालि–व्याकरण में संस्कृत के 'निस्' एवं 'निर्' के स्थान पर केवल नौ उपसर्ग उपलब्ध होता है। इसी प्रकार संस्कृत के 'दुस्' एवं 'दुर्' के स्थान पर पालिव्याकरण में दु उपसर्ग प्रयुक्त होता है। अतः पालि में उपसर्गों की संख्या 22 से घटकर 20 रह गई है, जो निम्नलिखित हैं – प, परा, नि, नी, उ, दु, सं, वि, अव, अनु, परि, अधि, अभि, पति, सु, आ, अति, अपि, अप, उप इति वीसति उपसग्गा। [11]

उपसर्गों का प्रयोगात्मक रूपः

संस्कृत–वैयाकरणों के अनुसार उपसर्गों की स्थिति तीन रूपों में पायी जाती है– (क) अर्थ बोधकता, (ख) अर्थानुवर्तन और (ग) अर्थवैशिष्ट्य। यह कथन सुप्रसिद्ध ही है–

धात्वर्थं बाधते कश्चित् कश्चित्तामनुवर्तते।
तमेव विशिनष्ट्यन्य उपसर्गगतिस्त्रिधा।।

अर्थात् ये उपसर्ग कहीं तो धातु के अर्थ को बाधित करते हैं, कहीं धात्वर्थ का ही अनुवर्तन करते हैं तथा कभी–कभी उसी अर्थ में विशेषता ला देते हैं और इस प्रकार उन उपसर्गों की तीन प्रकार की गति है। [12] उपसर्गों के लगने से धातुओं के अर्थों में एक और विलक्षणता यह आ जाती है कि कहीं–कहीं अकर्मक धातुएँ भी सकर्मक हो जाती हैं। जैसे– अकर्मक 'भू' धातु का अर्थ 'होना' है, परन्तु अनु उपसर्ग लगाने से इसका अर्थ 'अनुभव करना' सकर्मक हो जाता है। यथा – पानी दुःखमनुभवति (पापी दुःख भोगता है)।

संस्कृत–वैयाकरणों के ही अनुकरण पर इन उपसर्गों के सम्बन्ध में रूपसिद्धि में लिखा है–

धात्वत्थं बाधते कोचि–कोचि तं अनुवत्तते।
तमेव??ो विसेसेति उपसग्गगती तिधा।। [13]

इसके साथ ही यह भी कहा गया है कि 'ये पादि उपसर्ग धातु का योग पाकर उसके अर्थ को सजा देते हैं, और सुन्दर बना देते हैं। [14] रूपसिद्धिकार ने इन उपसर्गों का किन–किन अर्थों में प्रयोग होता है, उन्हें प्रायः एकत्र कर दिया है। [15]

(क) अर्थबाधकता– अर्थबाधकता के सम्बन्ध में ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, कि कुछ उपसर्ग ऐसे हैं, जो धातु से युक्त होकर उसके मूल अर्थ का बाध करके उसके विपरीत या सर्वथा भिन्न अर्थ का बोध कराते हैं। जैसे–

संस्कृत में–

गम् झ जाना – गच्छति त्र जाता है – आ + गम् – आगच्छति त्र आता है।

[+] स्वर। अन्तर्। प्रातर्। पुनर्। सनुतर्। उच्चैस्। नीचैस्। शनैस्। ऋधक्। ऋते। युगपत्। आरात्। पृथक्। ह्यस्। श्वस्। दिवा। रात्रौ। सायम्। चिरम्। मनाक्। ईषत्। जोषम्। तूष्णीम्। बहिस्। अवस्। अधस्। समया। निकषा। स्वयम्। वृथा। नक्तम्। न। नञ्। हेतौ। इद्धा। अद्धा। सामि। वत्। ब्राह्मणवत्। क्षत्रियवत्। सना। सनत्। सनात्। उपधा। तिरस्। अन्तरा। अन्तरेण। ज्योक्। कम्। शम्। सहसा। विना। नाना। स्वस्ति। स्वधा। अलम्। वषट्। श्रौषट्। वौषट्। अन्यत्। अस्ति। उपांशु। क्षमा। विहायसा। दोषा। मृषा। मिथ्या। मुधा। पुरा। मिथो। मिथस्। प्रायस्। मुहुस्। प्रवाहुकम्। (प्रवाहिका)। आर्यहलम्। अभीक्ष्णम्। साकम्। सार्धम्। नमस्। हिरुक्। धिक्। अथ। अम्। आम्। प्रताम्। प्रशान्। मा। माङ्। च। वा। ह। अह। एव। एवम्। नूनम्। शश्वत्। युगपत्। भूयस्। कूपत्। सूपत्। कुवित्। नेत्। चेत्। चण्। यत्र। कच्चित्। नह। हन्त। माकिः। माकिम्। नकिः। नकिम्। माङ्। नञ्। यावत्। तावत्। त्वै। (न्वै)। द्वै। रै। श्रौषट्। वौषट्। स्वाहा। स्वधा। वषट्। तुम्। तथाहि। खलु। किल। अथो। अथ। सुष्ठु। स्म। आदह। अवदत्तम्। अहंयुः। अस्तीक्षीरा। अ। आ। इ। ई। उ। ऊ। ए। ऐ। ओ। औ। पशु। शुकम्। यथाकथाच्च। पाट्। प्याट्। अङ्ग। है। हे। भोः। अये। द्य। विषु। एकपदे। युत्। आतः। चादिराकृतिगणः।वि

♦ कच्चायन ने भी आवुसो शब्द, उपसर्ग तथा निपातों के पश्चात् एकवचनात्मक तथा बहुवचनात्मक सभी विभक्तियों का लोप माना है। द्रष्टव्य : सूत्रसंख्या 2.4.11 तथा इसकी वृत्ति, कच्चायन व्याकरण।

* अष्टाध्यायी के उपर्युक्त सूत्रों से स्पष्ट है कि पाणिनि के मत में भी उपसर्ग द्योतक ही हैं, अकेले उनका कोई अर्थ नहीं। निरुक्त, सं० उमाशङ्कर शर्मा, 'ऋषि' पृ० 17

या झ जाना – याति त्र जाता है – आ + या – आयाति त्र आता है।
हृ झ हरण करना – हरति त्र हरण करता है – प्र+हृ – प्रहरति त्र प्रहार करता है।

पालि में–
सर झ स्मरण करना – सरति त्र स्मरण करता है – वि+सर – विसरित त्र भूल जाता है।
वत्त झ होना – वत्तति त्र होता है – प + वत्त – पवत्तति त्र आगे चलता है।
कम झ चलना – कमति त्र चलता है – परा + कम – परक्कमति त्र पराक्रम करता है।
चि झ चुनना – चिनति त्र चुनता है – नी + चि – निच्छिनोति त्र निश्चय करता है।

(ख) अर्थानुवर्तन– कुछ उपसर्ग ऐसे हैं जो कि धातु के मूल अर्थ का ही अनुगमन करते हैं। जैसे– आ + गम् झ आना – आगच्छति त्र आता है – अधि + आ + गम् त्र अध्यागच्छति त्र आता है।
आ + गम् झ आना – आगच्छति त्र आता है – परि + आ + गम् त्र पर्यागच्छति त्र लौटता है।
इन उदाहरणों में अधि, परि के कारण उपर्युक्त आख्यात–पदों के अर्थों में कोई विशेष अन्तर नहीं आया है।

(ग) अर्थवैशिष्ट्य– कुछ उपसर्ग ऐसे होते हैं, जिनके कारण धातु के अर्थ में विशेषता आ जाती है। जैसे –
पचति : प्रपचति। पतति : निपतति। नमति : प्रणमति। अटति : पर्यटति।
चरति : विचरति। गच्छति : अनुगच्छति, प्रतिगच्छति आदि।
एक पदमूल के साथ उपसर्गों के प्रयोग की सीमा के विषय में संस्कृत भाषा में सामान्यतया दो उपसर्गों का साथ–साथ प्रयोग पाया जाता है। जैसे– व्याकरणम्, व्याधिः आदि। रामायण में एक साथ तीन–तीन उपसर्गों का प्रयोग भी देखने को मिलता है। यथा– समुपक्रम्य, समुपानयत्, अभ्युपागम्य, अनुव्याहरत् आदि। इसके बाद भी भाषिक व्यवहारों में यह संख्या तीन तक ही परिसीमित रही, परन्तु वैयाकरणों ने सैद्धान्तिक रूप में पाँच संख्या तक एक साथ प्रयोग किये जाने को मान्यता प्रदान कर दी थी और कई लेखकों की रचनाओं में कहीं–कहीं ये रूप देखने को मिल जाते हैं। जैसे– आहरति, व्याहरति, अभिव्याहरति, समभिव्याहरति, प्रसमभिव्याहरति। [16] परन्तु वैदिक साहित्य में दो ही उपसर्गों का एकत्र प्रयोग पाया जाता है। जैसे– उप प्र याहि (ऋक्०)। उप प्रागात् (अथर्व०) आदि।

निपात (अव्यय) (प्दकमबसपदंइसमे):
संस्कृत में निपात अथवा अव्ययपदों (प्दकमबसपदंइसमे) का एक पृथक् वर्ग है। अपने स्वतन्त्र अर्थों तथा प्रयोग के लिए किसी पर आश्रित न होने के कारण भाषा में इनका प्रयोग कहीं स्वतन्त्र रूप में, कहीं क्रिया–विशेषणात्मक–पद के रूप में तथा कहीं समुच्चय–बोधक–पद के रूप में पाया जाता है।
पालिव्याकरण के अनुसार तथा, यथा, एवं, खलु, खो, यत्र, तत्र, अथो, अथ, हि, तु, च, वा, वो, हं, अहं, अलं, एव, भो, अहो, हे, रे, अरे, हरे आदि निपात अव्यय हैं। इनके सम्बन्ध में रूपसिद्धि में लिखा है –
समुच्चयविकप्प न पतिसेधपूरणादि अथं असत्ववाचिकं नेपातिकं ....। पूरणत्थं दुविधं– पदपूरणं अत्थपूरण४च। तत्थ अथ, खलु, वत ..... सेय्यथीदं इच्चेवमादीनि पदपूरणानि। अत्थपूरणं दुविधं– विभत्तियुतं, अविभत्तियुतंच .....। एवं नामाख्यातोपसग्गविनिम्मुत्तं यदव्ययलक्खणं तं सब्बं निपातपदं ति वेदितब्बं। वुत्त४च –

> ''मुत्तं पदत्तया तस्मा निपतत्यन्तरन्तरा।
> नेपातिकन्ति वं वुत्तं यं अव्ययसलक्खणं ति।।'' [17]

निपातों (अव्ययों) का वर्गीकरण– स्वरादिगण की परिगणना के अनुसार मूलतः इन निपातों की संख्या 128 थी, [18] जिनमें से लगभग दो दर्जन से अधिक तो ऐसे हैं जो वैदिक भाषा तक ही परिसीमित थे और यास्क के समय तक यह संख्या काफी सीमित हो गयी थी। निरुक्त में केवल 23 निपातों का परिगणन किया गया है तथा दो अन्य निपातों– 'नू–चित्' तथा 'नू–च' को भी इनमें सम्मिलित करने से यह संख्या 25 हो जाती है, [19] किन्तु संस्कृत वैयाकरणों ने लौकिक संस्कृत के लिए लगभग 45 ऐसे निपातों की सत्ता स्वीकार की है जो कि विभिन्न प्रकार के अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। अर्थाभिव्यक्ति की दृष्टि से इनका वर्गीकरण निम्नलिखित वर्गों में किया गया है–

1. संग्रहार्थक (Conjunctive) – अथ, अपि, च।
2. विग्राहार्थक (Disjunctive) – वा, अह, अथ, उत, पुनः, तु, नु।
3. निश्चयार्थक (Emphatic) – खलु, किल, नूनम्, हि, एव।
4. अनुमत्यार्थक (Permissive) – आम्, ओम्, एवम्, बाढम्।
5. निषेधार्थक (Negative) – न, मा।
6. प्रश्नार्थक (Interrogative) – किम्, अपि।
7. हेत्वर्थक (Argumentative) – हि, ननु, यद्, तद्।
8. सादृश्यार्थक (Comparative) – इव, एवम्।
9. सम्बोधनार्थक (Vocative) – अंग, अयि, हे, अरे, रे।
10. भावोद्रेकक (Enterjection) – आ, आम्, आ, अये, अहो, अहत्, हा,
11. हन्त, वत, धिक्।
12. वाक्यपरिपूरक (Expletive) – उ, वै, ह।

परन्तु रूपरचना की दृष्टि से संस्कृत तथा पालि के अव्ययपदों को दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है– (क) व्युत्पन्न या यौगिक अव्यय तथा (ख) अव्युत्पन्न या रूढ अव्यय।

(क) व्युत्पन्न या यौगिक अव्यय :
जो किसी धातु या नाम शब्द से किसी विशेष अर्थ में प्रत्यय लगकर बनते हैं, उन्हें 'व्युत्पन्न अव्यय' कहते हैं। ये दो प्रकार के हैं– 'कृदन्त अव्यय' अर्थात् धातु से प्रत्यय लगकर बनने वाले अव्यय और 'तद्धित अव्यय' अर्थात् नाम शब्द से प्रत्यय लगकर बनने वाले अव्यय।

कृदन्त अव्यय – आचार्य पाणिनि के अनुसार कृदन्तों में मकारान्त शब्द (णमुल् प्रत्ययान्त – स्मारं स्मारम्, तुमुन् प्रत्ययान्त– भोक्तुम् आदि) तथा ए (जीव् + से* त्र जीवसे), (पा + शध्यै त्र पिबध्यै), ओ, औ में अन्त होने वाले [20] तथा क्त्वा (गत्वा) और (क्त्वार्थ ल्यप्– विहाय) तोसुन्+ (उदेतोः) एवं कुसुन्+ (विसृपः) प्रत्ययान्त शब्द अव्यय हैं। [21] कृदन्त अव्यय अर्थात् धातु से प्रत्यय लगकर बनने वाले अव्ययों को प्रमुखतः दो वर्गों में बाँटा जा सकता है– क्त्वा प्रत्ययान्त और तुमुन् प्रत्ययान्त।

क्त्वा प्रत्ययान्त – क्त्वा प्रत्यय, जहाँ दो (या अधिक) धात्वर्थों का एक ही कर्ता होता है, वहाँ पूर्वकाल में वर्तमान धातु से होता है। [22] अतः इसे पूर्वकालिक क्रिया कहा जाता है। जैसे– भू–भूत्वा, हस्–हसित्वा, पच्–पक्त्वा, नम्–नत्वा, हन्–हत्वा, पा–पीत्वा, दृश्–दृष्ट्वा, श्रु–श्रुत्वा आदि।

ल्यप् प्रत्ययान्त – समास में अर्थात् धातु से पूर्व कोई उपसर्ग लगा हो तो 'क्त्वा' के स्थान पर 'ल्यप्' (य) प्रत्यय हो जाता है, परन्तु न४ के पूर्व होने पर नहीं होता। [23] जैसे– प्र+हृ त्र प्रहृत्य, सम्+भू

---

* 'से' और 'शध्यै' प्रत्यय 'तुमर्थ से–सेन् असे–असेन् .....' आदि (अष्टाध्यायी , 3.4.9) सूत्र से होते हैं तथा ये दोनों वैदिक प्रत्यय हैं।

+ ये प्रत्यय भी वैदिक हैं, जो कि 'ईश्वरे तोसुन्कसुनौ' (वही, 3.4.13) सूत्र से होते हैं।

त्र सम्भूय, अनु+ग्रह् त्र अनुगृह्य, वि+लिख् त्र विलिख्य, आ+गम् त्र आगत्य, आगम्य, आ+लभ् त्र आलभ्य, नि+पा त्र निपीय, उप+स्था त्र उपस्थाय आदि। नञ् के पूर्व में होने पर–अकृत्वा।

पालि व्याकरण में कृदन्त अव्ययों के अन्तर्गत पूर्वकालिक अव्ययों में वैकल्पिक रूप में 'तून, क्त्वान, क्त्वा', ये तीन प्रत्यय होते हैं। [24] जैसे– सु+तून त्र सोतून, सु+त्वान (क्त्वान) त्र सुत्वान, सु+त्वा (क्त्वा) त्र सुत्वा त्र सुनकर। इसमें भी संस्कृत के ही समान धातु के साथ समास होने पर अर्थात् धातु से पूर्व उपसर्ग होने पर क्त्वा को विकल्प से 'प्य' (य) आदेश होता है। [25] कच्चायन ने 'प्य' प्रत्यय को 'य' के रूप में उल्लेख किया है तथा यह विधान किया है कि यह 'य' आदेश 'तून', 'त्वान' तथा 'त्वा' सभी प्रत्ययों को होता है। [26] उनके अनुसार धातु के पूर्व उपसर्ग न होने पर भी इन प्रत्ययों को 'य' आदेश होता है। जैसे– दिस (पस्सा) म्य त्र पास्सिय त्र देखकर। इसी प्रकार संस्कृत व्याकरण में जहाँ धातु से पूर्व उपसर्ग का योग होने पर सामान्यतः 'क्त्वा' के स्थान पर 'ल्यप्' का विधान मिलता है, वहीं पालिव्याकरण में ऐसी स्थिति में धातु या उपसर्ग विशेष के सन्दर्भ आदि में वैकल्पिक रूप से अन्य विभिन्न आदेश होते हैं। जैसे – क्त्वा → तुं, यान [27] – अभि + हा + तुं त्र अभिहट्ठुं, अभिहरित्वा त्र लाकर। अनुमुद + यान त्र अनुमोदियान, अनुमोदित्वा त्र अनुमोदन करके।

क्त्वा → रच्च [28] – आ + हन + अच्च (रच्च) त्र आहच्च, अहनित्वा त्र मारकर।

क्त्वा → च, च तथा रिच्च [29] – स+कर+च त्र सक्कच्च, सक्करित्वा त्र सत्कार करके।

अस + कर + च त्र असकच्च, असक्करित्वा त्र असत्कार करके। अधि + कर + रिच (इच्च) त्र अधिकिच्च, अधिकरित्वा त्र अधिकार करके।

क्त्वा → च्च [30] – अधि + इ + च्च त्र अधिच्च, अधियित्वा त्र पढ़कर।

क्त्वा → वान, वा [31] – दिस + वान* त्र दिस्वान, दिस + वा त्र दिस्वा, परिस्सत्वा त्र देखकर।

इस प्रकार कृदन्त अव्ययों के अन्तर्गत पूर्वकालिक क्रियाओं की रचना के लिए संस्कृत व्याकरण में विशेषतः 'क्त्वा' प्रत्यय का ही विधान मिलता है, जबकि पालिव्याकरण में 'तून', 'त्वान' तथा 'त्वा', ये तीन प्रत्यय प्राप्त होते हैं, परन्तु इनमें से 'त्वा' प्रत्यय का ही प्रयोग अधिक होता है। 'तून' और 'त्वान' प्रत्ययों के प्रयोग कम हैं। इसके अतिरिक्त धातु से पूर्व उपसर्ग के संयुक्त होने पर 'क्त्वा' के स्थान पर होने वाले 'ल्यप्'–आदेश के सम्बन्ध मे भी पालिव्याकरण के नियम में विविधता तथा स्वतन्त्रता तो है ही, परन्तु साथ ही इसमें यह व्यवस्था वैकल्पिक भी है।

तुमुन् प्रत्ययान्त (Infinitive)– जिस क्रिया के लिए कोई दूसरी क्रिया की जाती है, उसकी धातु में भविष्य अर्थ को प्रकट करने के लिए या किसी कार्य के उद्देश्य को प्रकट करने के लिए 'तुमुन्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। [32] जैसे– कृष्णं द्रष्टुं याति। संस्कृत में 'उनके लिए' इस भाववाचक शब्द से चतुर्थी विभक्ति भी हो जाती है। [33] जैसे– सः पठितुं याति – सः पठनाय याति। इसके साथ ही 'काम' और 'मनस्' शब्दों के साथ इसका समास भी हो जाता है। जैसे– स द्रष्टुकामः, वक्तुमनाः। यहाँ संस्कृत तथा पालिव्याकरण के निमित्तार्थक अव्ययों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं। संस्कृत– भू–भवितुम्, हस्–हसितुम्, पठ्–पठितुम्, रक्ष्–रक्षितुम्, पच्–पक्तुम्, नम्–नन्तुम्, गम्–गन्तुम्, दृश्–द्रष्टुम्, स्था–स्थातुम्, पा–पातुम्, जि–जेतुम्, नी–नेतुम्, रुद्–रोदितुम्, स्वप्–स्वप्तुम्, हन्–हन्तुम्, दा–दातुम्, जन्–जनितुम्, आप्–आप्तुम्, प्रच्छ्–प्रष्टुम्, भुज्–भोक्तुम्, क्री–क्रेतुम्, ग्रह्–ग्रहितुम्, कथ्–कथयितुम्।

पालि – पालिव्याकरण में निमित्तार्थक अव्यय शब्दों के रचनार्थ तीन प्रत्यय उपलब्ध होते हैं – तुं, ताये, तवे। [34] जैसे– तुं→भुज–भोत्तुं,कर–कातुं, सु–सोतुं, दिस–दट्ठुं, वद– वत्तुं, रुन्ध–रुन्धितुं, रज्झितुं, निन्द–निन्दितुं, जि–जेतुं, गम–गन्तुं। ताये–कत्ताये। तवे–कातवे।

संस्कृत एवं पालिव्याकरण के उपर्युक्त निमित्तार्थक अव्ययों की रचना करने वाले प्रत्ययों के ईक्षण से स्पष्ट है कि संस्कृत में इस अर्थ में एक 'तुमुन्' प्रत्यय का ही उल्लेख हुआ है, जबकि पालि में इस सन्दर्भ तीन प्रत्ययों का विधान मिलता है। इनमें **'तुं'** और **'तवे'** प्रत्ययों वाले उदाहरण अधिक प्रचलित हैं। कच्चायन ने अपने व्याकरण में 'ताये' प्रत्यय का उल्लेख नहीं किया है।

अव्ययीभाव–समास अव्यय (Adverbial compound indiclinables)– अव्यीभाव का अर्थ है– 'अव्यय हो जाना', अर्थात् समस्त पद अव्यय हो जाता है। संस्कृत [35] एवं पालिव्याकरण, [36] दोनों में ही अव्ययीभाव समास में यह व्यवस्था मिलती है, अर्थात् उनके रूप नहीं चलते।* अव्ययीभाव समास होने पर शब्द प्रायः+ नपुंसकलिग के एकवचन वाले रूप के समान प्रयुक्त होता है। [37] यहाँ संस्कृत एवं पालि व्याकरण के अव्ययीभाव–समास अव्यय के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं–

संस्कृत – अधिहरि, उपकृष्णम्, निर्मक्षिकम्, अनुरूपम्, प्रतिदिनम्, यथाशक्ति, आसमुद्रम्, उपशरदम् आदि।

पालि – अधित्थि, उपनगरं, निम्मक्खिकं, अनुरूपं, अनुगङ्गं आदि।

णमुल्–प्रत्ययान्त (Gerund)– संस्कृत में कभी–कभी किसी क्रिया के बार–बार करने के लिए 'क्त्वा' के अर्थ में 'णमुल्' (अम्) प्रत्यय भी हो जाता है और उसका प्रयोग दो बार होता है। [38] जैसे – पायं पायम् त्र पीत्वा पीत्वा (बार–बार पीकर)। भोजं भोजम् त्र भुक्त्वा भुक्त्वा (बार–बार खाकर)। श्रावं श्रावम् त्र श्रुत्वा श्रुत्वा (बार–बार सुनकर)।

किसी क्रिया के बार–बार होने के अर्थ में पालिव्याकरण में 'सो' प्रत्यय का विधान मिलता है, [39] परन्तु यहाँ दित्व नहीं होता है। जैसे– खण्डसो त्र खण्ड–खण्ड करके। एकेकसो त्र एक–एक करके।

तद्धितान्त अव्यय* – नाम तथा सर्वनाम शब्दों के बाद तद्धित के कुछ प्रत्यय लगते हैं, जिनके लगने से शब्द अव्यय बन जाते हैं।

---

* यहाँ पर कच्चायन ने **'क्त्वा'** को **'स्वान'** एवं **'स्वा'** आदेश तथा दिस के स का लोप–विधान किया है।

* इस सम्बन्ध में रूपसिद्धिकार ने लिखा है– 'तत्थ अव्ययमिति उपसग्गनिपातनं सञ्ञा लिङ्गवचनभेदेपि व्ययरहितत्ता। अव्ययानं अत्थं विभावयतीति अव्ययीभावो, अव्ययत्यपुब्बङ्गमत्ता; अनव्ययं अव्ययं वा अव्ययीभावो। पुब्बपदत्थप्पधानो हि अव्ययीभावो। एत्थ च उपसग्गनिपातपुब्बको तिवुत्तत्ता उपसग्गनिपातमेव पुब्बनिपातो।'

रूपसिद्धि, सूत्र 315, क० व्या०, पृष्ठ 178 से उद्धृत।

\+ अव्ययीभाव समास होने पर यदि वह समस्तपद अदन्त हो तो पञ्चमी विभक्ति को छोड़कर अन्य विभक्तियों को 'अम्' हो जाता है और यह 'अम्' तृतीया एवं सप्तमी, इन दोनों के स्थान पर विकल्प से होता है – नाव्यीभावाद् अतोऽम् त्वपञ्चभ्याः, तृतीया सप्तभ्योर्बहुलम्। (अष्टाध्यायी, 2.4.83, 2.4.84)। तुलनीय : नातोमपञ्चमिया, वा ततिया सत्तमीनं (मो०, 2.123–124; अं विभत्तीनमकारन्तव्ययीभावा, (क०व्या० 2.7.26) तथा न पञ्चम्यायमम्भावो क्वचीति अधिकारतो। ततियासत्तमीछट्ठीनन्तु होति विकप्पतो। वही, सूत्र 321, क० व्या, पृष्ठ 199 से उद्धृत।

* तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिः। अष्टाध्यायी, 1.1.38 – जिससे सब विभक्तियाँ नहीं आती वह तद्धितान्त अव्यय हो। इनका परिगणन निम्न रूप से है – 'पञ्चम्यास्तसिल्' (अष्टाध्यायी 5.3.7) से लेकर 'याप्ये पाशप्' (वही, 5.3.47) के पहले तक आये हुए प्रत्यय, 'बहुवल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम्' (वही, 5. 4.42) से लेकर 'समासान्ताः' (वही, 5.4.68) सूत्र से पहले आये हुए प्रत्यय, 'अमु च छन्दसि' (वही, 5.4.12) से विहित 'अम्' प्रत्यय, 'किमेत्तिङव्ययघ्यादाम्वद्रव्यप्रकर्षे' (वही, 5.4.11) से विहित आम् प्रत्यय, 'संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्' (वही, 5.4.17) से विहित कृत्वसुच् प्रत्यय, 'द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्' (वही, 5.4.18) तथा 'एकस्य सकृच्च' (वही, 5.4.19)

तद्धितान्त अव्ययों को प्रमुख रूप से चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है यहाँ उदाहरण–स्वरूप क्रमशः संस्कृत एवं पालि के कुछ तद्धितान्त अव्ययों को प्रस्तुत किया जा रहा है।

विभक्ति बोधक– तस् (तसिल्) [40] – युष्मत्तः, अस्मत्तः, त्वत्तः, मत्तः, ततः, यतः, अतः, मध्यतः, परतः, इतः, अमुतः, परितः, अभितः, सर्वतः उभयतः।

त्र (त्रल्) [41]– यत्र, तत्र, कुत्र, बहुत्र, एकत्र, सर्वत्र।

ळ [42]– इह।

अस्तात् (अस्ताति) [43] – पूर्वस्तात्, पुरस्तात्, अधस्तात्, उपरिष्टात्, अवस्तात्, अवरस्तात्।

आति [44] – पश्चात्, उत्तरात्, अधरात्, दक्षिणात् आदि।

एनप् [45] – दक्षिणेन, उत्तरेण, पूर्वेण, अधरेण, पश्चिमेन।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य विभक्त्यन्त शब्द जो अव्यय के रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे– चिराय, चिरेण, चिरम्, एकपदे (सहसा, एक साथ– तत्सर्वमेकपदे विनष्टम्), स्थाने (उचित रूप से, यह उचित ही है– स्थाने तव गुणेषु जना अनुरक्ताः)।

कालबोधक :

दा [45] – सर्वदा, एकदा, अन्यदा, कदा, यदा, तदा।

दानीम् [46]– इदानीम्, कदानीम्, यदानीम्, तदानीम्।

दा [47]– तदा।

अधुना [48]– अधुना।

र्हि (र्हिल्) [49]– एतर्हि; कर्हि, कदा; यर्हि, यदा; तर्हि, तदा।

प्रकार बोधक :

था (थाल्) [50]– यथा, तथा, सर्वथा, उभयथा।

थम् (थमु) [51]– कथम्, इत्थम्, कथम्।

धा [52]– एकधा, द्विधा, त्रिधा, चतुर्धा, प?चधा, शतधा, सहस्रधा, बहुधा।

विविध :

कृत्वस् (कृत्वसुच्) [53]– द्विकृत्वः, त्रिकृत्वः, प?चकृत्वः, सप्तकृत्वः आदि।

स् (सुच्) [54]– द्विः, त्रिः, चतुः।

सुच् [55]– सकृत्।

पालिव्याकरण में ऐसे चौदह प्रत्ययों का उल्लेख मिलता है, जिनके योग से तद्धितान्त अव्ययों की रचना होती है। वे निम्नाटित हैं –

विभक्ति बोधक – तो–गामतो त्र गाँव से, चोरतो [56] त्र चोर से; कुतो त्र कहाँ से, ततो त्र वहाँ से, यतो त्र जहाँ से, इतो त्र यहाँ से, अतो [57] त्र यहाँ से; अभितो त्र दोनो ओर, परितो त्र चारों ओर, पच्छतो त्र पीछे से, हेट्ठता [58] नीचे से; आदितो त्र शुरू से, मज्झतो त्र बीच से, अन्ततो त्र अन्त से, पिट्ठितो त्र पीछे से, पस्सतो त्र बगल से, मुखतो [59] त्र सामने से आदि।

त्र एवं त्थ [60] – सब्बत्र, सब्बत्थ त्र सभी में, सभी जगह; यत्र, यत्थ त्र जिसमें, जहाँ; तत्र, तत्थ त्र उसमें, वहाँ; परत्र, परत्थ त्र दूसरी जगह।

धि– सब्बधि, सब्बत्थ, सब्बत्र [61] त्र सब में।

हिं– यहिं, यत्र [62] त्र जहाँ।

हं– तहं, तहिं, तत्र [63] त्र तहाँ।

कालबोधक– दा [64]– सब्बदा त्र सभी समय, एकदा त्र एक समय, अ??ादा त्र दूसरे समय, यदा त्र जिस समय, तदा त्र उस समय।

प्रकारबोधक– था [65]– सब्बथा त्र सभी प्रकार से, यथा त्र जिस प्रकार से, तथा त्र उस प्रकार से।

धा [66]– द्विधा त्र दो प्रकार से, एकधा – एक प्रकार से, बहुधा त्र बहुत प्रकार से, प?चधा त्र पाँच प्रकार से।

एधा [67]– द्वेधा, द्विधा त्र दो प्रकार से, तेधा, तिधा त्र तीन प्रकार से।

ज्झं [68]– एकज्झं, एकधा त्र एक प्रकार से।

विविध– क्खत्तुं– द्विक्खत्तुं [69] त्र दो बार, कतिक्खत्त [70] त्र कितनी बार; बहुधा, बहुक्खत्तं [71] त्र बार–बार, सकिं [72] त्र एक बार, वैकल्पिक रूप – एकक्खत्तुं।

सो [73]– प्रकार – पुथसो त्र विस्तार से, सब्बसो त्र सभी प्रकार।

ची [74]– धवलीकरोति त्र अधवल को धवल करता है। धवली सिया त्र अधवल धवल होवे। धवली भवति त्र अधवल धवल होता है।

(ख) अव्युत्पन्न या रूढ़ अव्यय :

संस्कृत तथा पालियाकरण में कृदन्त, तद्धित तथा समास के रूप में बनने वाले अव्ययों को देकर अब कुछ अव्युत्पन्न अव्ययों को दिखाया जा रहा है। संस्कृत में अव्युत्पन्न अव्ययों की संख्या बहुत अधिक है और उनके अर्थों को कोश–ग्रन्थों के द्वारा जाना जा सकता है, परन्तु यहाँ उदाहरण के रूप में कुछ प्रमुख अव्ययों को उद्धृत किया जा रहा है, जिनके अर्थों में विविधता तथा प्रयोग में सूक्ष्म दृष्टि अपेक्षित है। इनमें से कुछ अव्यय सम्बोधन तथा विस्मयादि के बोधक भी होते हैं, उन्हें अन्त में पृथक् सूची में दिखाया गया है।

संस्कृत में विशेष अर्थ–द्योतक अव्यय :

अजस्रम् त्र नित्य या शाश्वत। अ४जसा त्र सीधा, साक्षात्, जल्दी से। अद्धा त्र सच, निश्चय से, स्पष्ट। अन्तः त्र अन्दर। अन्तरा त्र अन्दर, बीच में। अन्तरेण त्र बिना। अपि त्र यद्यपि, और भी अधिक, भी। अलम् त्र पर्याप्त, निषेधार्थ, सजाना। अस्ति त्र यह शब्द अस् धातु के प्रथम पुरुष का एकवचन होने के साथ अव्यय भी है। अह्नाय त्र तत्काल, शीघ्र। आम् त्र हाँ (किसी बात को याद करके उसके विषय में निश्चयात्मकता)। आरात् त्र दूर, समीप। आविः त्र प्रकट, आँखों के सामने होना। इति त्र इस प्रकार, वाक्य–समाप्ति–सूचक। उत त्र या (सन्देहसूचक)। ऋते त्र विना। एव त्र ही। एवम् त्र इस प्रकार। नो त्र नहीं। ओम् त्र वाक्य के प्रारम्भ में मङ्गल सूचक शब्द। कच्चित् त्र क्या। कामम् त्र इच्छानुसार। किमुत त्र और भी अधिक, उसका तो कहना क्या। किल त्र निश्चय से। कृतम् त्र बस। खलु त्र सचमुच, निश्चय पूर्वक। चेत् त्र यदि। जातु त्र बिल्कुल। तत् त्र तो, इसलिए। तावत् त्र तब तक। यावत् त्र जब तक। तिर्यक् त्र तिरछा। तिरः त्र तिरछा या क्षिपना। तूष्णीम् त्र चुप। द्राक् त्र शीघ्रतापूर्वक। ननु त्र निश्चय ही, प्रश्नगर्भ निश्चय। नाम – यह 'नामन्' सुबन्त के समान ही 'नाम' अर्थ में अव्यय के रूप में आता है, निश्चय से। निकषा त्र समीप। निकामम् त्र अत्यधिक, भरपूर। नु त्र वितर्क, प्रश्न और सन्देह के रूप में अनिश्चय। नूनम् त्र निश्चय ही। परितः त्र चारों ओर। प्रत्युत त्र इसके विपरीत। प्रसह्य त्र हठात्, बलपूर्वक। प्रायः, प्रायेण त्र बहुधा, अक्सर। मनाक् त्र थोड़ा सा। मा त्र मत (निषेधार्थक)। मिथः त्र परस्पर। मुधा त्र व्यर्थ ही। मुहुः त्र बार–बार। युगपत् त्र एक साथ। वरम् त्र भले ही। श्वः त्र आगामी कल। परश्वः त्र आगामी कल से अगला दिन अर्थात् परसों। सकृत् त्र एक बार। सद्यः त्र तत्काल। सपदि त्र तत्काल, उसी समय। समया त्र समीप। सम्प्रति त्र अब। सुष्ठु त्र अच्छे प्रकार से, यह उचित ही है। स्वस्ति त्र कल्याण हो, पत्र के प्रारम्भ में आशीर्वाद या नमस्कार के रूप में। ह्यः त्र बीता हुआ कल।

सम्बोधन, विस्मय, दुःख आदि सूचक अव्यय :

अयि, अये– सम्बोधन सूचक। हह– दुख प्रकट करने के अर्थ में, आश्चर्य प्रकट करने के लिए। अहो– 'आश्चर्य तथा हर्ष सूचक'। दिष्ट्या त्र भाग्य से (हर्ष सूचक)। धिक्– निन्दा सूचक। बत त्र दुःख, आश्चर्य प्रकट करने में। हन्त– हर्ष सूचक, दुःख सूचक। हा त्र हाय (शोक सूचक)।

से विहित सुच् प्रत्यय, 'तसेश्च' (वही, 5.3.8) से विहित तसि प्रत्यय, 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वति' (वही, 5.1.114) तथा 'तत्र तस्येव' (वही, 5.1.115) से विहित वति (वत्–ब्राह्मणवत्, मथुरावत्) प्रत्यय एवं 'विनञ्भ्यां नानाञौ न सह' (वही, 5.2.27) से विहित 'ना' और 'नाञ्' प्रत्यय।

पालि के रूढ़ि अव्यय :

अग्गतो त्र सामने। अज्ज त्र आज। अ४जदत्थु त्र निश्चय से। अत्थु त्र ऐसा हो। अतीव त्र अत्यधिक, बहुत। अद्धा त्र निश्चय से। अन्तरा त्र मध्य में, बिना। अप्पेव त्र सम्भवतः। अभिक्खणां त्र बार–बार, निरन्तर। अभिण्हं त्र बार–बार, निरन्तर। अमा त्र साथ। अमुत्र त्र परलोक में। अलं त्र बस। आम त्र हाँ। आरका त्र दूर। ईस त्र थोड़ा। उद – सन्देहसूचक। एवम्पि त्र ऐसे भी। कच्चि त्र क्या। कामं त्र निश्चय से। कुदाचन त्र कभी। चिररसं त्र चिरकाल। जातु त्र निश्चय से। तग्ध त्र निश्चय से। ततो त्र उस कारण से। तिरियं त्र तिरछा। दोसो त्र रात में। नु त्र शायद। पतिरूपं त्र ठीक। परम्मुखा त्र पीछे की ओर। पसय्ह त्र जबरदस्ती। पुनप्पुनं त्र बार–बार। पेच्च त्र परलोक में। मा त्र नहीं। मुधा त्र बेकार। मुसा त्र झूठ। मुहु त्र बार–बार। यथत्र त्र ऐसा ही। यथातथं त्र ऐसा ही। रत्तं त्र रात्रि में। रहो त्र गुप्त। रिते त्र बिना। विय त्र सदृश। सज्जु त्र तुरन्त। सद्धं त्र अनुकूल। समन्ततो त्र चारों ओर। सम्पति त्र इस समय। सं त्र प्रसन्नतापूर्वक। सहं त्र साथ। सु त्र अथवा। सुट्ठु त्र अच्दी तरह। सुवत्थि त्र आशीर्वाद। हिय्यो त्र कल (बीता हुआ)।

सम्बोधन, विस्मय, दुःख आदि सूचक अव्यय :

अय्यो त्र हे। भो त्र हे। अहो त्र आश्चर्य सूचक। एवं त्र हाँ। दिट्ठा त्र भाग्य से। हि त्र आः। धि त्र धिक्कार। हन्द – प्रेरणासूचक।

इस प्रकार से संस्कृत एवं पालिव्याकरण में प्राप्त अव्ययपदों पर तुलनात्मक दृष्टि डालने से स्पष्ट है कि दोनों में प्रायः समान ही अव्यय हैं। प्रत्ययों की संख्या में न्यूनता–अधिकता अवश्य है, परन्तु व्याकरणिक नियम एक जैसे ही प्रतीत होते हैं। इसके साथ ही थोड़ी बहुत व्य४जन सम्बन्धी भिन्नता भी है किन्तु उसके लिए स्वर व्य४जन परिवर्तन सम्बन्धी नियम ही पर्याप्त हैं।

भाषाविज्ञान का रसायन, कैलाशनाथ पाण्डेय, पृष्ठ 611

1. वही, पृष्ठ 611 से उद्धृत
2. गोपथ ब्राह्मण, प्रपाठक 1, कण्डिका 26
3. अष्टाध्यायी, 1.1.37। स्वरादयो निपाताश्चाव्ययसंज्ञा स्युः।
4. सूत्रवृत्ति, लघुसिद्धान्तकौमुदी, अव्ययप्रकरण
5. (क) असंख्येहि सब्बासं। मोग्गल्लान व्याकरण, 2.120
   (ख) न विज्जते संख्या यस्स तं असंख्यं। मोग्गल्लान पञ्जिका, 3.2
6. भाषाविज्ञान का रसायन, पृष्ठ 611
7. (क) द्योतकाः प्रादयो येन निपाताश्चादयस्तथा। –वैयाकरणभूषणसार, निपातार्थ निर्णय, 42
   (ख) प्रादयो द्योतकाश्चादयो वाचकाः, इति नैयायिकमतमयुक्तम् .....। वही, निपातार्थनिर्णय, पृष्ठ 300
8. (क) प्रादयः। अष्टाध्यायी 1.1.4.58; उपसर्गाः क्रियायोगे। वही,1.4.59; ते प्राग्धातोः, 1.4.80
   (ख) क्रिया विशेषक उपसर्गः। महाभाष्य 1.3.1
   (ग) उपेत्य नामाख्यातयोरर्थस्य विशेषं सृजन्ति – उत्पादयन्ति इत्युपसर्गाः। स्कन्दभाष्य, निरुक्त 1.1.4
9. (क) निरुक्त, 1.1.3
   (ख) ऋग्वेद प्रातिशाख्य में भी 20 ही उपसर्ग गिनाये गये हैं (11.6)।
10. उपसर्गाः क्रियायोगे। अष्टाध्यायी (1.4.59) सूत्र की वृत्ति, लघुसिद्धान्त कौमुदी
11. सब्बासमावुसोपसग्गनिपातादीहि च। कच्चायन व्याकरण 2.4.11 की वृत्ति
12. संस्कृत का ऐतिहासिक एवं संरचनात्मक परिचय, डी०डी०शर्मा, पृष्ठ 177
13. (क) क० व्या०, सूत्रसंख्या 2.4.11 की हिन्दी टीका, पृष्ठ 119 से उद्धृत।
    (ख) पालिव्याकरण, अव्यय प्रकरण – डॉ० राम अवध पाण्डेय एवं डॉ० रविनाथ मिश्र, पृष्ठ 128
14. उपेच्चत्यं सज्जन्तीति उपसग्गा हि पादयो।
    चादी पदादिमज्झन्ते निपाता निपतन्ति हि।।
    कच्चायन व्याकरण एवं पालिव्याकरण की पृष्ठ संख्या क्रमशः 119 तथा 128 से उद्धृत।
15. द्रष्टव्यः कच्चायन व्याकरण एवं पालिव्याकरण, पृष्ठ संख्या क्रमशः 119–120 तथा 128–129
16. (क) संस्कृत का ऐतिहासिक एवं संरचनात्मक परिचय, पृष्ठ 179
    (ख) संस्कृत भाषा का इतिहास, पृष्ठ 376–377
17. कच्चायन व्याकरण, सूत्र 2.4.11 की टीका से उद्धृत
18. संस्कृतभाषा का इतिहास, पृष्ठ 379
19. निरुक्त, 1.2
20. कृन्मेजन्तः। वही, 1.1.39
21. क्त्वातोसुन्कसुनः। निरुक्त, 1.1.40
22. समानकर्तृकयोः पूर्वकाले। वही, 3.4.21
23. समासेऽन?पूर्वक्त्वो ल्यप्। वही, 7.137
24. (क) पुब्बेककत्तुकानं। मो० 5.63
    (ख) पुब्कालेककत्तकानं तूनत्वानत्वा वा। कच्चायन व्याकरण, 4.2.15
25. प्योवात्वास्य समासे। मो०, 5.164
26. सब्बेहि तूनादीनं यो। कच्चायन व्याकरण, 4.4.8
27. तुं याना। मो०, 5.165
28. (क) हना रच्चो। मो, 5.166
    (ख) चनन्तेहि रच्चं। कच्चायन व्याकरण, 4.4.9
29. सासाधिकरा च च रिच्चा। मो०, 5.167
30. इतो च्चो। मो०, 5.168
31. दिसा वानवा स् च। वही, 5.169
32. (क) तुमुन्–ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्। अष्टाध्यायी, 3.3.10
    (ख) समानकर्तृकेषु तुमुन्। वही, 3.3.158
33. (क) तुमर्थाच्च भाववचनात्। वही, 2.3.15
    (ख) भाववचनाश्च। वही, 3.3.11
34. (क) तुं ताये तवे भावे भविस्सति क्रियायं तदत्थायं। मो०, 5.61
    (ख) इच्छत्थेषु समानकत्तुकेषु तवेतुं वा। कच्चायन व्याकरण, 4.2.12
35. (क) अव्ययीभावः। अष्टाध्यायी, 2.1.5
    (ख) अव्ययीभावश्च। वही, 1.1.4
36. उपसग्गनिपातपुब्बको अव्ययीभावो। कच्चायन व्याकरण, 2.7.4
37. (क) अव्ययीभावश्च। अष्टाध्यायी, 2.4.18
    (ख) तं नपुंसकं। मो० 3.9
    (ग) सो नपुंसकलिगे। कच्चायन व्याकरण, 2.7.5
38. (क) आभीक्ष्ण्ये णमुल् च। अष्टाध्यायी, 3.4.22
    (ख) नित्यवीप्सयोः। वही, 8.3.4
39. सो वीच्छाप्पकारेसु। मो० 4.118
40. (क) प४चम्यास्तसिल्। अष्टाध्यायी, 5.3.7
    (ख) पर्यभिभ्यां च। वही, 5.3.9
    (ग) सर्वोभयार्थाभ्यामेव। वार्तिक
41. सप्तम्यास्त्रल्। अष्टाध्यायी, 5.3.10
42. इदमो ह। वही, 5.3.11
43. दिक्शब्देभ्यः सप्तमीप४चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः। वही, 5.3.27
44. (क) पश्चात्। वही, 5.3.32
    (ख) उत्तराधरदक्षिणादातिः। वही, 5.3.34
45. एनबन्यतरस्यामदूरेऽप?चम्याः। वही, 5.3.35
46. सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा। वही, 5.3.15
47. दानीं च। वही, 5.3.18
48. तदो दा च। वही, 5.3.19
49. अधुना। वही, 5.3.17
50. (क) इदमोर्हिल्। वही, 5.3.16
    (ख) अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्। वही, 5.3.21

51. प्रकारवचनेथाल्। अष्टाध्यायी, 5.3.23
52. (क) इदमस्थमुः। वही, 5.3.24
    (ख) किमश्च। वही, 5.3.25
53. संख्याया विधार्थे धा। वही, 5.3.42
54. संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्। वही, 5.4.17
55. द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्। वही, 5.4.18
56. एकस्य सकृच्च। वही, 5.4.19
57. (क) तो प४चम्या। मो० 4.95
    (ख) क्वचि तो प४चम्यत्थे। कच्चायन व्याकरण, 2.5.2
58. इतो तेत्तो कुतो। मो०, 4.96
59. अभ्यादीहि। वही, 4.97
60. आद्यादीहि। वही, 4.98
61. सब्बादितो सत्तम्या त्रत्था। वही, 4.99
62. धि सब्बा वा। वही, 4.101
63. या हिं। वही, 4.10215
64. (क) तां हं च । वही, 4.103
    (ख) कु हिं क हं। वही, 4.104
65. सब्बेक??ायतेहि काले दा। मो०, 4.105
66. सब्बादीहि पकारे था। वही, 4.108
67. धा संख्या हि। वही, 4.110
68. द्वि ती हे धा। वही, 4.112
69. वे का ज्झं। वही, 4.112
70. वारसंख्याय क्खत्तुं। वही, 4.114
71. कतिम्हा। वही, 4.115
72. बहुम्हा धा च पच्चा सत्ति यं। वही, 4.116
73. स किं वा। वही, 4.117
74. सो वीच्छाप्पकारेसु। वही, 4.118
75. अभूततब्भावे करासभूयोगे विकारा ची। वही, 4.119